पुलिस का (अ) सामाजिक उत्पाद

दिल्ली हाइकोर्ट ने केंद्र सरकार को दिल्लीवासियों की सुरक्षा को लेकर चेताया है। दिल्ली पुलिस के लिए गृह मंत्रालय की स्वीकृति के बावजूद चौदह हजार अतिरिक्त भर्तियां नहीं हो सकीं और चार सौ पचास करोड़ रुपए के सीसीटीवी कैमरे लगाने के लिए धनराशि मुहैया नहीं कराई गई। हाइकोर्ट के सामने लंबित दिल्ली पुलिस, राज्य सरकार और केंद्र सरकार के शपथपत्रों के आलोक में पुलिस की क्षमता-वृद्धि और आधुनिकीकरण की इन जरूरतों का देर-सबेर पूरा किया जाना अनुमानित होगा ही। इस बीच महाराष्ट्र एटीएस के सामुदायिक रुझान का एक बिरला उदाहरण भी सामने आया- उन्होंने आइएस के प्रचार के प्रभाव में सीरिया जाने पर उतारू कई नौजवानों की काउंसलिंग कर उनकी घर वापसी कराई है। इसके बरक्स आतंकी मामलों में मुस्लिम युवकों के झूठे चालान और असीमानंद की जमानत में मिलीभगत जैसे आरोप भी जांच एजेंसियों पर लगते रहे हैं, जिनका लाभ युवकों को बरगलाने वाले उठाते हैं।

पुलिसिया कायदे जहां छोटे-मोटे अपराधी को शातिर बना देने की कुव्वत रखते हैं, व्यवस्था की अंधी चपेट की मार में आने वालों को असामाजिक रास्तों पर जाने का उकसावा तक सिद्ध होते रहे हैं। हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में दलित छात्र रोहित का आत्महत्या-प्रकरण छात्रों के दो संगठनों में तनाव से उपजा। इसकी जड़ में इनमें से एक संगठन (अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद) की दिल्ली विश्वविद्यालय में वह ताकत है जिसके चलते वहां 'मुजफ्फरनगर बाकी है' नामक सांप्रदायिकता-विरोधी फिल्म का प्रदर्शन नहीं हो सका था। एक लोकतांत्रिक डीएनए वाली पुलिस ने संविधान-प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के इस सरासर अपमान को शिद्दत से लिया होता, न कि इस पर लीपापोती हुई होती। तब शायद हैदराबाद परिसर के उबलने की नौबत भी न आती।

भारतीय लोकतंत्र में पुलिस की इस परिचालन-विसंगति को कैसे समझें, जो किताबों में लिखे कानून को गली-कूचों में ठोस न्याय की शक्ल नहीं लेने दे रही? एफआइआइटी और यूजीसी परिसरों में लाठीचार्ज का तांडव करने वाली एजेंसी मालदा में मूकदर्शक बनी रह जाती है! पेशेवर-अकादमिक तबकों से निकले विरोधी स्वरों पर दमन की गर्मी, जबकि घोर असामाजिक तत्वों की सांप्रदायिक आड़ में बलवे और आगजनी की खुली नुमाइश पर भी ठंड! गोया कि राजधानी के थानों से लेकर सुदूर माओवादी मैदान तक एक जैसे समीकरण का बोलबाला है- भारत का संविधान लोकतांत्रिक है; उसे देशवासियों के दैनिक जीवन में लागू करने वाले न्याय-व्यवस्था के उपकरण नहीं! दरअसल, पुलिस के सामाजिक उत्पाद, 'कानून का शासन' की आधारभूत लोकतांत्रिक व्यवस्था को कमजोर ही करते आए हैं।

पुलिस को प्राय: अपराध-अपराधी, यातायात, बंदोबस्त या सुरक्षा और आतंक जैसे संदर्भों में देखने के आदी समाज में उसकी क्षमता को आंकड़ों में देखने-परखने का चलन है- उसके पेशेवर प्रतिफलों का सामाजिक उत्पाद के रूप में आकलन नहीं होता। इस घातक चूक से जुड़ा परिणाम है पुलिस की क्षमता-वृद्धि और आधुनिकीकरण की दौड़ में उसके लोकतंत्रीकरण के महत्त्वपूर्ण आयामों का पीछे छूट जाना। न तो पुलिसकर्मी, न पुलिस की पद्धतियां और न ही पुलिस के काम के सामाजिक उत्पाद- लोकतंत्र के मान्य पैमाने इनमें से किसी की भी अनिवार्य कसौटी नहीं बनाए जाते!

पुलिस की आए दिन की कार्यप्रणाली में अवैधानिक विरोधाभास वैसे ही नहीं समाए हुए हैं- उसकी लोक-छवि का मानो एक लगभग अपरिवर्तनीय-सा (अ)समाजशास्त्र बन गया है- एफआइआइटी और यूजीसी जैसी सक्रियता मालदा की निष्क्रियता की भरपाई कर देती है! हरियाणा के राम रहीम को एक धार्मिक दर्जा देकर उनके अनुयायियों की 'धार्मिक' भावनाओं को ठेस पहुंचाने के अपराध में टीवी कॉमेडियन कीकू शारदा को एक नहीं दो-दो बार आनन-फानन में गिरफ्तार कर लिया जाता है! जबकि हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में आत्महत्या करने पर विवश किए गए शोध छात्र को आतंकी और देशद्रोही बताने वाले केंद्रीय मंत्री और तदनुसार उसे छात्रावास से निष्कासित करने वाले कुलपति के विरुद्ध मुकदमा भी देशव्यापी आक्रोश के बाद ही दर्ज हो सका। इस मामले में किसी की गिरफ्तारी या सजा की तो दूर-दूर तक कोई बात ही नहीं- ऊपर से दिल्ली में पुलिस ने विरोध जताते छात्रों पर कड़कती ठंड में पानी की बौछार की और डंडे फटकारे। जाहिर है, 'कानून का शासन', पुलिस के सामाजिक उत्पाद के दायरे में एक तकनीकी अवधारणा भर रहा है, न कि लोकतांत्रिक शर्त।

क्या हम सड़क पर खाकी वर्दी और सुरक्षात्मक कवच में लाठी भांजती पुलिस पर लदे हुए कानून के गुरुतर भार को समझते हैं? कमांडर ने किसी एक अचानक क्षण में नागरिकों के समूह पर लाठीचार्ज का फैसला लिया- तो यह उनके लिए लाठी कौशल का ही नहीं, लोकतंत्र की समझ का भी संवेदी इम्तहान बन जाना चाहिए। इसकी पालना में जब सिपाही लाठी चलाता है तो ज्यादातर उसके पास उत्तेजित अवस्था में संतुलित व्यवहार के लिए बमुश्किल चंद सेकेंड ही होते हैं। लाठी किस पर पड़नी है, कहां पड़नी है- पैर पर, हाथ पर, पीठ पर या कभी जब जान पर ही बन आए तो आत्मरक्षा में सिर पर बड़े से बड़े मानवतावादी के लिए भी यह लोकतांत्रिक अनुकूलन की गहनतम परीक्षा का क्षण होगा। पर पुलिसकर्मी के लिए यह अपरिचित संवेदनाओं का क्षेत्र सिद्ध होता है क्योंकि उसका सारा अभ्यास लाठी भांजने के तकनीकी कौशल पर केंद्रित रहा है।

यही नहीं, इन पुलिसकर्मियों में से अधिकतर या शायद सभी पूर्व ड्यूटी की थकान उतरे बगैर, और बिना वस्तुस्थिति की समुचित जानकारी के, मौके पर भेजे गए होते हैं, क्योंकि अकस्मात आई घड़ी में न इतनी बेशी नफरी ही उपलब्ध होती है और न उतना समय किसी के पास होता है, और जहां समय और नफरी दोनों हों भी, वहां भी पुलिस की कार्यपद्धति में सामयिक अनुकूलन का असर ही हावी मिलेगा, न कि संवैधानिक अनुकूलन का। दरअसल, पुलिस के प्रशिक्षण, संगठन और कार्य-संस्कृति में बस कौशलतंत्र की दक्षता रची-बसी होती है, जबकि लोकतंत्र का समीकरण सिरे से नदारद मिलेगा। पुलिसकर्मी को एक लोकाचारी कानूनदां के रूप में नहीं, अधिकारी व्यवस्था के उत्तरदायी एजेंट के रूप में देखा जाता है!

उदाहरण के लिए, एफआइआइटी (पुणे) और यूजीसी (दिल्ली) पर धरना दे रहे छात्रों पर काबू पाने के लिए हुए पुलिस के लाठीचार्ज पर लौटें। दोनों ही जगहों पर केंद्र सरकार के निर्णयों के प्रति छात्रों के दीर्घकालिक विरोध के स्वर लोकतांत्रिक रहे हैं। एफआइआइटी में एक स्वर से छात्र एक 'अपात्र' को संस्था का अध्यक्ष नियुक्त किए जाने पर आंदोलनरत हुए, जबकि यूजीसी के विरुद्ध देश भर से शोधरत छात्र इसलिए लामबंद हुए क्योंकि मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आदेश ने उन्हें अरसे से चले आ रहे वजीफों से वंचित कर दिया था। दोनों दृष्टांतों में पुलिस की लाठी कारगर भूमिका में रही, जबकि लोकतांत्रिक रणनीति नदारद मिली।

लाठीचार्ज के इन प्रदर्शनों से ठीक उलट मामला है मालदा का, जहां अराजक तत्वों से भरी विशाल सांप्रदायिक भीड़ को घंटों बेखौफ हिंसक उपद्रव करने दिया गया, यहां तक कि इस दौरान पुलिस थाना तक उनका निशाना बना। उन्हें काबू करने में पुलिस निष्क्रिय बनी रही। उसके सैन्यीकरण और आधुनिकीकरण का इस्तेमाल नहीं हुआ। दरअसल, ऐसी स्थितियां भी पुलिस की पेशेवर प्रणाली में लोकतांत्रिक तत्परता के अभाव का ही नतीजा हैं। शासनतंत्र की नीतिगत बेरुखी के चलते मालदा प्रकरण का विश्लेषण भी राजनीतिक दोषारोपण के दायरे में रहा और इसमें निहित सामाजिक संदेश की अनदेखी हुई।

एक रोडरोलर को स्कूटर की तरह नहीं चलाया जा सकता। भारत के संविधान का गठन बेशक लोकतंत्र के पक्ष में रोडरोलर सरीखा हो, पर उसे व्यावहारिक जीवन में खींचने वाले कानूनी इंजनों और पुलिसिया पहियों में स्कूटर का दम-खम भी नहीं। यह पेशेवर कौशल का ही नहीं, लोकतांत्रिक क्षमता का प्रश्न भी है। न्याय-व्यवस्था के कौशल-संपन्न उपकरणों में लोकतांत्रिक क्षमता भरने का! ऐसी क्षमता के अभाव में इन उपकरणों के हश्र की एक झलक अमेरिकी समाज के विकसित प्रयोगों में देखी जा सकती है जहां पुलिस की नागरिकों पर होने वाली हिंसा में वृद्धि एक अनवरत राष्ट्रीय बहस का रूप ले चुकी है। यह माना जा रहा है कि पुलिस को नई तरह से प्रशिक्षित किए जाने की जरूरत है।

अलाबामा में फरवरी 2015 में अट्ठावन वर्षीय निहत्थे भारतीय नागरिक सुरेश भाई पटेल का मामला अमेरिका और भारत दोनों देशों में चर्चित रहा था। उनको अपने बेटे के अपार्टमेंट के पास टहलते हुए अमेरिकी पुलिसकर्मी पार्कर ने जमीन पर गिरा कर बेबस कर दिया, जिससे वे आंशिक रूप से लकवे का शिकार हो गए। अंग्रेजी न समझने वाले पटेल पर किसी अपराध का शक नहीं था और पुलिसकर्मी को बस इतना लगना काफी था कि वे उसके आदेश का पालन नहीं कर रहे हैं। अब अदालत ने भी पार्कर के कृत्य को अपराध न मानते हुए उसे बरी कर दिया है। कई पुलिसकर्मियों ने इस मुकदमे में गवाही दी कि इस तरह पटेल को जमीन पर गिराना राज्य की नीति के अंतर्गत पुलिसकर्मी के प्रशिक्षण के अनुरूप था।

पुलिस के आदेशों की अवमानना में हिंसा के मामलों में जो कानूनी स्थिति अमेरिका में है, कमोबेश वही भारत में भी। इन कृत्यों को जान-बूझ कर किया गया अपराध सिद्ध करना लगभग असंभव हो जाता है, चाहे पीड़ित कितना भी शांतिपूर्ण या बेदाग क्यों न हो। लेकिन इससे समाज में अपनी ही पुलिस और न्याय-व्यवस्था के प्रति अविश्वास और आक्रोश पैदा होता है। इसी तरह दंगे-फसाद में पुलिस की निष्क्रियता समाज में असुरक्षा और खौफ की आवृत्ति का निमंत्रण जैसा है। न्याय के नजरिए से दोनों तरह का सामाजिक उत्पाद पूर्णतया अमान्य होना चाहिए। इसके लिए पुलिस-प्रशिक्षण और व्यवहार में हिंसा के अनिवार्य इस्तेमाल को संविधान की अवमानना से नत्थी करने की जरूरत है।

-विकास नारायण राय

गतांक की चीर-फ़ाड़

मज़दूर मोर्चा के 16-31 जनवरी 2016 के अंक में राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, शैक्षिक व सांस्कृतिक मुद्दों पर अनेक महत्वपूर्ण लेख पढने को मिले। राज चाहे कांग्रेस का हो या भाजपा का, दोनों के शासनकाल में पूंजीपतियों की कम्पनियों की मिलीभगत से राजमार्ग बनाने के लिये टोल नाकों के जरिए जनता से प्रतिवर्ष अरब-खरबों रुपयों की लूट की जा रही है। इस सम्बन्ध में अम्बानी की रिलायंस इन्फ्रास्ट्रेक्चर कम्पनी द्वारा किए गये घोटाले को कैग द्वारा उज़ागर किए जाने के बावजूद उसके विरुद्ध कोई आपराधिक मुकदमा दर्ज कराने की बजाए भाजपा सरकार द्वारा हरियाणा में बल्लभगढ व पलवल के बीच गदपुरी पर भी टोल नाका लगाने का लाइसेंस दे दिया गया।

जिसका 'गदपुरी टोल नाका: रिलायंस का लाइसेंसी डाका' तथा 'कमीशन-तराजू में तुलते टोल नाके' लेखों में पूरा पर्दाफ़ाश किया गया है। इस सम्बन्ध में नियम है कि राजमार्ग चौड़ा करने के काम को पूरा करने के बाद ही टोल वसूली की जा सकती है। परन्तु इस नियम को दर किनार करते हुए तत्कालीन कांग्रेसी सरकार ने काम शुरू करने से पहले ही अम्बानी की रिलायंस कम्पनी को पलवल से आगे बंचारी के पास व मथुरा से आगे दो टोल नाके के जरिए टोल वसूल करने के लाइसेंस जारी कर दिए थे। गौरतलब है कि स्थानीय सांसद एवं केन्द्रीय राज्यमंत्री कृष्णपाल गूजर ने लोकसभा चुनाव से पूर्व बदरपुर वार्डर वाले टोल टैक्स को जजिया कर बताते हुए इसे हटाने के लिए धरना प्रदर्शन किए थे।

भाजपा के वर्तमान केन्द्रीय सड़क एवं परिवहन मंत्री नितिन गडकरी ने घोषणा की थी कि केन्द्र में भाजपा की सरकार बनने के बाद टोल नाके हटा दिए जायेंगे जिससे वाहनों के आवागमन में बाधा नहीं होगी तथा पेट्रोल व डीजल की खपत में कमी आएगी। परन्तु केन्द्र में भाजपा सरकार बनने व गडकरी के सड़क एवं परिवहन मंत्री बनने के बाद भी टोल नाके बनाने के और लाइसेंस दिए जा रहे हैं। भाजपा सरकार ने अम्बानी की लूट को और बढाने के लिये उसकी रिलायंस कम्पनी को बल्लभगढ व पलवल के बीच गदपुरी पर टोल नाका लगने का लाइसेंस दे दिया। स्पष्ट है मोदी के शासन काल में भी गडकरी के नेतृत्व में राजमार्ग बनाने की गति में तेज़ी आने के साथ-साथ सत्ताधारी गिरोह द्वारा टोल नाकों के जरिए लाखों-करोड़ों रुपयें की लूट जारी है।

जब से दिल्ली में केजरीवाल के नेतृत्व में आम आदमी पार्टी की सरकार बनी है और भाजपा का सफ़ाया हुआ है तभी से केन्द्र में मोदी की भाजपा सरकार व केजरीवाल की सरकार के बीच खींचतान चल रही है। केन्द्रीय सरकार लेफ़्टिनेंट गवर्नर नजीब जंग तथा पुलिस कमिश्नर भीम सेन बस्सी के ज़रिए केजरीवाल सरकार का परेशान करने में कोई मौका नहीं छोड़ती। दिल्ली पुलिस द्वारा केजरीवाल सरकार के मन्त्रियों व विधायकों को किसी न किसी बहाने पकड़ने पर स्तम्भ 'खबरदार/आपकी धरपकड़ और अपनी कमाई में स्वतंत्र।' के जरिए उचित कटाक्ष किया गया है। इस सम्बन्ध में दिल्ली हाईकोर्ट व सीबीआई की अदालत द्वारा की गई टिप्पणियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हाईकोर्ट ने दिल्ली पुलिस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि दिल्ली पुलिस को केन्द्रीय सरकार के इशारे पर काम नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे स्वतंत्र रूप से काम करना चाहिए। केजरीवाल के प्रिंसिपल सैक्रेटरी राजेन्द्र कुमार और कुछ अन्य लोगों के खिलाफ़ मामले में सीबीआई अदालत ने कहा कि जांच एजेंसी ने केवल मौखिक सूचना के आधार पर केस दर्ज करने में जल्दबाज़ी दिखाई और रेड के दौरान सीबीआई अधिकारियों द्वारा पावर का मिसयूज करने की बात कहते हुए एजेंसी को निर्देश दिया कि वह रेड के दौरान जब्त जरूरी औरिजिनत दस्तावेज़ों को तुरंत वापिस कर दे। अदालत की इन टिप्पणियों से केन्द्र सरकार, दिल्ली पुलिस व सीबीआई की किरकिरी हुई है।

केन्द्र में मोदी की भाजपा सरकार बनने के बाद आरएसएस व उससे सम्बन्धित संगठनों द्वारा देश में हिन्दुत्व की विचारधारा का प्रचार बिना किसी रोक-टोक के पूरे जोश से किया जा रहा है तथा समाज में असहिष्णुता का तनावपूर्ण वातावरण बनाया जा रहा है। जो व्यक्ति तथा संगठन इस विचारधारा का विरोध या आलोचना करता है उसे हिन्दू विरोधी, देश हित विरोधी, आतंकवादी समर्थक तथा देश विरोधी करार कर दिया जाता है। विडम्बना है कि संघ परिवार द्वारा उसके विरोधियों को ही असहिष्णु बताया जाता है। परन्तु मीडिया द्वारा भी इस बात को नहीं उठाया जाता कि विरोधियों को असहिष्णु बताना क्या संघ परिवार व भाजपा की असहिष्णुता नहीं है? इस सम्बन्ध में कविता 'मेमनों की असहिष्णुता' तथा लेख 'सहिष्णुता के अहंकार में डूबा समाज-आमिर खान के बयान पर छिड़ा विवाद' अत्यंत उपयुक्त है। कविता में संघ परिवार (भेड़ियों की सहिष्णुता) तथा विरोधियों (मेमनों की असहिष्णुता) के बीच जारी असहिष्णुता बनाम सहिष्णुता बहस पर उचित व्यंग्य किया गया है।

हरियाणा में भाजपा की खट्टर सरकार शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करने के अपने दायित्व को नज़रंदाज करते हुए सरकारी स्कूल बड़े शिक्षा व्यापारियों को 'गोद देने' की योजना के अन्तर्गत सौंपने जा रही है, जिसका लेख 'शिक्षा का सत्यानाश करने की होड़ गोद के बहाने स्कूल बेचने की होड़' सटीक विश्लेषण किया गया है। प्रश्न है कि शिक्षा व्यापारी किन स्कूलों को गोद लेंगे, उन स्कूलों के स्टाफ़ का क्या होगा तथा इन गोद लिए स्कूलों का भी क्या वही हश्र होगा जैसा उन गांवों का जो प्रधानमंत्री की योजना के अन्तर्गत गोद लिए गए थे? इसके अतिरिक्त समाचार पत्र की रिपोर्ट के अनुसार हरियाणा सरकार अपने सरकारी कॉलेजों को भी प्राइवेट विश्वविद्यालयों को सौंपने जा रही है। इसका अर्थ है खट्टर सरकार हरियाणा में शिक्षा को पूर्ण रूप से निजी क्षेत्र में बड़े शिक्षा व्यापारियों के हवाले करने जा रही है। इसके अतिरिक्त मानव संशाधन विकास मंत्रायल द्वारा शैक्षिक व उद्योगों के बीच भागीदारी मजबूत करने के नाम पर देश की प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग संस्थाओं (आई आई टी) के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर के चेयरपर्सन के पद पर प्रमुख उद्योगपतियों जैसे कुमार मंगलम बिरला, राजीव मोदी, पंकज रमणभाई पटेल, मल्लिका श्री निवास आदि की नियुक्ति की जा रही है। इस नीति के फ़लस्वरूप शिक्षा का उद्देश्य शिक्षा व्यापारियों व उद्योगपतियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होगा न कि विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना।

मोदी के डेढ वर्ष के शासन के दौरान देश में साम्प्रदायिक तनाव व झड़पों में वृद्धि होने, हिन्दू साम्प्रदायिकता की तर्ज़ पर मुस्लिम साम्प्रदायिकता और सिख साम्प्रदायिकता पनपने तथा पश्चिमी बंगाल की मालदा घटना को लेकर भाजपा द्वारा वहां गुजरात दोहराने की सम्भावना पर स्तम्भ 'तुर्की-ब-तुर्की/ भारत के किसी को साम्प्रदायिकता नहीं दी-मोदी' तथा कार्टून द्वारा उचित कटाक्ष किया गया है।

धारावाहिक -कॉमेडी विद कपिल' में भाजपा के चहेते डेरा सच्चा सौदा के गुरमीत राम रहीम का मजाक उड़ाने पर किकू शारदा उर्फ़ पलक तथा अन्य कलाकारों के खिलाफ़ शिकायत करने पर बिना कोई सम्मन भेजे व नोटिस दिए हरियाणा पुलिस द्वारा पलक को पकड़ कर लाने और अदालत द्वारा उसे न्यायिक रिमांड पर भेजने के विरुद्ध कड़ा विरोध होने पर शारदा को छोड़ने का लेख 'पलक की गिरफ़्तारी, हरियाणा सरकार ने थूककर चाटा' में पूरा विवेचन किया गया है। इस पूरे प्रकरण में हरियाणा सरकार हरियाणा पुलिस व अदालत की पूरी किरकिरी हुई है। अन्य प्रकाशित लेख भी उच्च स्तरीय व महत्वपूर्ण हैं।

-प्रो.जुगल किशोर गुप्ता